पुलिस सुधार: आवश्यकता, चुनौतियाँ एवं समाधान

"पुलिस सुधार की दिशा और दशा अपने आप तय हो रही है, हमारी तो कोई सुनता ही नहीं"। ये शब्द हैं देश की सर्वोच्च न्यायपालिका के। विदित हो कि सर्वोच्च न्यायालय ने यह वक्तव्य पुलिस सुधारों को तुरंत लागू किये जाने की मांग करती एक याचिका पर सुनवाई के दौरान दिया है। देश की शीर्ष अदालत का इस तरह से निःसहाय हो जाना अखरता है, लेकिन पुलिस सुधारों की प्रगति पर नज़र डालें तो न्यायपालिका का हतोत्साहित होना आश्चर्यचकित नहीं करता है।

पुलिस व्यवस्था क्या है?

दरअसल, पुलिस बल राज्य द्वारा अधिकारित व्यक्तियों का एक गठित निकाय है, जो राज्य द्वारा निर्मित कानूनों को लागू करने, संपत्ति की रक्षा और नागरिक अव्यवस्था को सीमित रखने का कार्य करता है। पुलिस को प्रदान की गई शक्तियों में बल का वैध उपयोग भी शामिल है। पुलिस बल को राज्य की रक्षा में शामिल सैन्य या अन्य संगठनों से अलग बल के रूप में परिभाषित किया जाता है। हालाँकि, सच्चाई यह है कि वर्तमान समय में पुलिस व्यवस्था अपना उदात्त स्वरूप खो चुकी है।

क्यों ज़रूरी है पुलिस सुधार ?

- आज आम आदमी को अपराधी से जितना डर लगता है, उतना ही डर पुलिस से भी है। उदाहरणार्थ किसी अपराधी गिरोह द्वारा हत्याएँ किये जाने अथवा किसी बड़े बैंक में डकैती डालने की घटना सामने आते ही लोग अपने घरों में दुबक जाते हैं, जब अपराधी अपना काम करके निकल जाते हैं तो लोग अपने घरों से निकलते हैं और पुलिस को देखते ही पुनः एक बार फिर अपने घरों के खिड़की, दरवाज़े बंद कर लेते हैं। इन घटनाओं से तो यही प्रतीत होता है कि पुलिस ने जनता का सहयोगी होने के अपने दायित्व को भुला दिया है।
- जैसे-जैसे हमारी अर्थव्यवस्था विकसित हो रही है उसमें साइबर अपराध और धोखाधड़ी जैसे अपराधों की संख्या में भी वृद्धि होना स्वाभाविक है। भ्रष्टाचार आज हमारे देश में संक्रामक रोग की तरह फैल चुका है । जब भ्रष्टाचार हमारे जीवन का एक अंग बन गया हो तो फिर पुलिस व्यवस्था कैसे इससे अछूती रह सकती है। हमारी पुलिस व्यवस्था में सुधार कर उसे बदलते वक्त के अनुरूप बनाना होगा।
- वरिष्ठ पुलिस अधिकारी जिनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे पीड़ित लोगों को न्याय प्रदान करेंगे तथा उन्हें समाज विरोधी तत्वों से बचाएंगे। वरिष्ठ अधिकारी जो कि भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिये कृतसंकल्प हो, वह जैसे ही सुधारों की प्रक्रिया आरम्भ करता है उसका तबादला कर दिया जाता है। दरअसल, पुलिस व्यवस्था में सुधार के जो पहलू हम फिल्मों में देखते हैं, व्यवहारिक तौर पर सम्भव नहीं है।
- पुलिस व्यवस्था में बदलाव एक संगठन में लाए जाने वाले बदलावों की तर्ज़ पर ही लाया जा सकता है और कोई भी वरिष्ठ अधिकारी, अधिकारियों व कर्मचारियों की प्रवृत्ति में रातोंरात बदलाव नहीं ला सकता है। लेकिन तबादलों से तंग वरिष्ठ अधिकारी वर्ग अब तो जैसे सुधारों की प्रक्रिया से ही तौबा कर चुका है। पुलिस व्यवस्था में जड़ जमा चुकी इस विसंगति को बदलने के लिये पुलिस सुधार तो करना ही होगा।
- गौरतलब है कि अभी तक कोई ऐसा तरीका विकसित नहीं किया जा सका है जिससे अपराधी को सभ्य ढंग से अपराध कबूल करने के लिये प्रेरित किया जा सके और शायद कभी कर भी न पाएँ, इसलिये 'थर्ड डिग्री' का हम चाहे जितना विरोध करें, उसकी कुछ न कुछ ज़रूरत शायद हमेशा बनी रहेगी। लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ निर्दोष व्यक्तियों के साथ ज़्यादती होती है और हमारी पुलिस इतनी संवेदनशील नहीं है कि वह स्वयं को निर्दोष व्यक्तियों के दुःखदर्द से जोड़ सके।

प्रकाश सिंह का योगदान

- वस्तुतः राष्ट्रीय पुलिस आयोग की स्थापना तो वर्ष 1977 में कर दी गई थी, लेकिन पुलिस सुधारों की चर्चा को जीवंत रखने और शीर्ष न्यायपालिका में ले जाने का श्रेय प्रकाश सिंह को जाता है। वर्ष 1996 में पूर्व डीजीपी प्रकाश सिंह ने 1977-81 के पुलिस आयोग की भुला दी गई सुधार-सिफारिशों को लेकर सर्वोच्च न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया था। प्रकाश सिंह उत्तर प्रदेश और असम जैसे कानून-व्यवस्था के लिहाज़ से मुश्किल माने जाने वाले राज्यों में पुलिस महकमे के मुखिया के साथ-साथ सीमा सुरक्षा बल के प्रमुख भी थे अतः यह स्वाभाविक है कि कानून-व्यवस्था को सक्षम बनाने की राह में व्यवस्थाजन्य बाधाओं को वे बखूबी समझते होंगे।
- प्रकाश सिंह की पहल से दस वर्ष में आए सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में राष्ट्रीय पुलिस आयोग की सिफारिशों के अनुरूप, पुलिस को राजनीति और नौकरशाही के बेजा दबावों से मुक्त करने और उसकी कामकाजी स्वायत्तता को बाह्य निगरानी के अपेक्षाकृत व्यापक माध्यमों से संतुलित करने पर बल दिया। हालाँकि, इन निर्देशों का (कुछ हद तक केरल को छोड़ कर) तमाम राज्यों और केंद्र ने भी अब तक छद्म अनुपालन ही किया है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश

- सर्वोच्च न्यायालय का पुलिस सुधार मुख्यत: स्वायत्तता, जवाबदेही और लोकोन्मुखता के बिंदुओं पर केंद्रित है। पुलिस की स्वायत्तता को मजबूत कर उसे बाह्य दबावों से मुक्त रखने के लिये सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि डीजीपी, आइजी, एसपी, एसएचओ की दो वर्ष की निश्चित तैनाती

मलिनी चाहिए तथा डीजीपी और अन्य चार वरिष्ठतम पुलिस अधिकारियों को उप पुलिस अधीक्षक स्तर तक के तबादलों का अधिकार दिया जाना चाहिये। पुलिस को कानूनी चौहद्दी में रखने के लिये राज्य पुलिस आयोग और पुलिस शिकायत प्राधिकरण की अवधारणा पर भी विचार किया गया। राज्यों को नए सिरे से लोकोन्मुख पुलिस अधिनियम बनाने का निर्देश दिया गया।

पुलिस सुधारों की प्रकृति में बदलाव की ज़रूरत क्यों?

- पुलिस सुधार की आवश्यकता के सन्दर्भ में दो राय रखने वाले कम ही देखने को मिलेंगे। हालाँकि कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि अब तक की सारी कयावाद कागज़ पर शानदार, पर व्यवहार में 'नई बोतल में पुरानी शराब' से ज़्यादा कुछ नहीं है! क्योंकि उपरोक्त प्राधिकरणों के गठन और कार्य-संस्कृति में सरकारों की न केवल निर्णायक भूमिका होगी बल्कि उनके पास पुलिस को घुटने पर लाने के लिये भी हज़ारों तरीके उपलब्ध रहेंगे। इसकी पूरी सम्भावना है कि दो वर्ष की स्वायत्तता के लिये कोई भी पुलिसकर्मी अपना पैंतीस वर्ष का सेवाकाल और सेवा-उपरांत फायदा दाँव पर नहीं लगाएगा। अतः वर्तमान सुधारों में पुलिस बल को बिना अदालती आदेश और जाँच-पड़ताल के डर के नागरिक-संवेदी बनाए जाने को भी जोड़ना होगा।

क्या हो आगे का रास्ता ?

- गौरतलब है कि लोकतांत्रिक प्रणाली में राजनीतिक सत्ता को एक सिरे से खारिज़ नहीं किया जा सकता। इस बात का संज्ञान न तो सर्वोच्च न्यायालय ने लिया और न ही पुलिस सुधार पर केंद्रित किसी भी आयोग या समिति का ऐसा मत रहा है। हमें समझना होगा कि लोकतांत्रिक पुलिस सुधार का क्रियाशील आधार एक सशक्त समाज ही हो सकता है, न कि समाज-निरपेक्ष पुलिस स्वायत्तता। पुलिस के वर्तमान कामकाजी संबंधों के अंतर्गत ही एक संवेदी और लोकोन्मुख कानून-व्यवस्था का निर्माण, प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से हासिल कर पाना संभव नहीं होगा। अतः पहले पुलिस नियुक्तियों की गुणवत्ता में वृद्धि करनी होगी। चूँकि पुलिस में आया हुआ व्यक्ति हमारे बीच का ही है, इसलिये पुलिस सुधारों की रुपरेखा तय करते समय समाजशास्त्र के नियमों को भी ध्यान में रखना होगा।
- विदित हो कि जिन राज्यों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों पर अमल हो रहा है वहाँ भी वरिष्ठ अधिकारियों को दो साल की बात कौन करे यहाँ तक कि दो महीने में ही तबादला कर दिया जा रहा है और कहीं से विरोध की कोई आवाज़ नहीं सुनाई दे रही है। यह दिखावटी सुधारों की ही स्थिति है। वस्तुतः पुलिस सुधार की वर्तमान कवायद पुलिस को सत्ता के प्रतिष्ठान से मुक्त करने की कोशिश पर आधारित है। इस कयावाद में पुलिस को बाह्य निगरानी के माध्यम से संतुलित रखने की परिकल्पना भी शामिल है। इसमें कोई शक नहीं है कि पुलिस सुधार के लिये ये सारे प्रयास महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन इन प्रयासों के साथ-साथ पुलिस को नागरिक-संवेदी बनाने पर भी बल देना होगा।

निष्कर्ष

- "जाके पांव न फटी बिवाई वो क्या जाने पीर पराई"। पुलिस सुधारों के सन्दर्भ में यह कथन एकदम सटीक बैठता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ ही यह मान लिया गया कि प्रशासनिक मशीनरी अपने आप लोकोन्मुख हो जाएगी। लेकिन जब राजनीतिक सत्ता का चरित्र ही खास नहीं बदला तो नौकरशाही या पुलिस का कैसे बदलती। पुलिस सुधार, केवल 21वीं सदी की ज़रूरत नहीं है बल्कि आज़ादी के बाद से ही इसमें सुधार की गुंजाइश थी जो समय के साथ और बढ़ती चली गई। "एक मज़बूत समाज अपनी पुलिस की इज्ज़त करता है और उसे सहयोग देता है, वहीं एक कमज़ोर समाज पुलिस को अविश्वास से देखता है और प्राय: उसे अपने विरोध में खड़ा पाता है"। अतः पुलिस सुधारों को सामाजिक कल्याण से जोड़कर ही इनके वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/police-reforms-necessities-challenges-and-solutions